प्रकृति को समझने के दो नज़रिए

सी.पी. राजेंद्रन

प्रकृति को समझने में विज्ञान ने दो तरीकों का उपयोग किया है - विवरणात्मक और मात्रात्मक। विषय के अनुसार इनकी अपनी खूबियां हैं। इन दोनों तरीकों की ऊंच-नीच से आगे जाकर यह आलेख दोनों के समन्वय की बात करता है।

केल्विन बहुत ही प्रतिभा सम्पन्न थे। महज़ दस साल की उम्र में ही उनका चयन ग्लासगो विश्वविद्यालय में हो गया था। वे अपने शोध पत्र छद्म नाम से प्रकाशित करवाते थे ताकि उनके वरिष्ठ खुद को लज्जित महसूस न करें। जल्द ही उन्होंने भौतिक विज्ञान के हर क्षेत्र और विद्युत-चुंबकीय, ऊष्मा-गतिकी व प्रकाश विज्ञान के सैद्धांतिक पहलुओं में महारत हासिल कर ली। फिर उन्होंने पृथ्वी की उम्र की गणना करने का प्रयास किया, जिसमें वे असफल रहे। यह रेडियोएक्टिविटी की खोज से पहले 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध की बात है।

दरअसल, उस दौरान कई वैज्ञानिक पृथ्वी की उम्र का आकलन करने का प्रयास कर रहे थे। बिल ब्रायसन ने अपनी पुस्तक 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ निअरली एवरीथिंग' में चर्च ऑफ आयरलैंड के आर्कबिशप जेम्स अशर का उदाहरण दिया है। आर्कबिशप जेम्स ने बाइबिल के गहन अध्ययन के आधार पर दावा किया था कि पृथ्वी का निर्माण ईसा पूर्व 4004 में 23 अक्टूबर की दोपहर को हुआ था।

न्यूटन की अगली पीढ़ी के केल्विन ने ऊष्मा-गतिकी के दूसरे नियम के आधार पर पृथ्वी की आयु गणनाएं की, लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि पृथ्वी की अपनी रेडियोएक्टिविटी ऊष्मा का एक सतत स्रोत है। इसलिए वे मानकर चले थे कि पृथ्वी का तापमान सिर्फ सूर्य की रोशनी की वजह से है। उनका तर्क था कि अगर सूर्य बहुत पुराना होता तो अब तक उसकी ऊर्जा खत्म हो चुकी होती, इसलिए ग्रहों की उम्र भी बहुत ज़्यादा नहीं हो सकती। अपनी गणनाओं के आधार पर उन्होंने अनुमान लगाया था कि पृथ्वी की न्यूनतम आयु 2 करोड़ साल और अधिकतम आयु 9.8 करोड़ साल होनी चाहिए।

लेकिन पदार्थवादी नज़रिए व सही समीकरणों के इस्तेमाल के बावजूद केल्विन का अनुमान काफी गलत साबित हुआ। भू-वैज्ञानिकों ने कैम्ब्रियन की परतों में 50 करोड़ साल पुराने जीवाश्म प्राप्त कर केल्विन के दावे को पूरी तरह गलत साबित कर दिया। हालांकि केल्विन अपने निधन तक भू-वैज्ञानिकों की इस खोज को मानने से इंकार करते रहे और अपनी बात पर अड़े रहे।

बाद में रेडियोएक्टिव तकनीकों से सिद्ध हुआ कि पृथ्वी 25 या 50 करोड़ साल नहीं, बल्कि पूरे 4.5 अरब साल पुरानी है। जीवाश्मीय और भूगर्भीय अवलोकन से भी इस बात की पुष्टि हुई। मैंने यहां इस वाकये का उल्लेख यह दर्शाने के लिए किया है कि अकादमिक क्षेत्र में केवल दंभ भरने से बात नहीं बनती। विज्ञान में कोई भी सटीक परिणाम गणितीय तकनीकों के श्रमसाध्य इस्तेमाल से ही हासिल किया जा सकता है।

अर्नेस्ट रदरफोर्ड ने भी कुछ इसी तरह का दंभ प्रदर्शित किया था। उन्होंने कहा था कि भौतिकी को छोड़कर शेष विज्ञान केवल डाक टिकटों के संग्रहण के समान है। विडंबना देखिए कि उन्हें नोबेल पुरस्कार भौतिकी में नहीं, रसायन शास्त्र में मिला। कहा जाता है कि रदरफोर्ड खुद अपने ही समीकरणों में अटक जाते थे और फिर छात्रों से पूछते थे। इसका मतलब यही है कि वे गणित में बहुत अच्छे नहीं थे।

कहते हैं कि एनरिको फर्मी ने किसी से नाई की दुकान का पता पूछा तो उसने उन्हें यह बताया कि दुकान गली में तीन ब्लाक आगे है। इस पर उन्होंने कहा था, 'मुझे समीकरण के रूप में समझाइए।'

भौतिक शास्त्री अक्सर भू-विज्ञान, जीव विज्ञान और वनस्पति विज्ञान को अवलोकन-आधारित विज्ञान व गुणात्मक मानकर उनके प्रति अरुचि दर्शाते आए हैं। यह उनका पूर्वाग्रह ही रहा है कि विज्ञान प्रयोग-आधारित है। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि विज्ञान अवलोकनों पर भी आधारित है।

निश्चित तौर पर यह दो संस्कृतियों के बीच विभाजन है। इनमें एक संस्कृति 'न्यूटनवाद' का प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरी संस्कृति 'डार्विनवाद' का। किसी समस्या के समाधान के लिए इन दोनों के तरीके में काफी अंतर है। भू-विज्ञान और ब्रह्मांड विज्ञान पर अगर न्यूटनवाद थोप दिया जाए तो क्या ये दोनों विज्ञान सही ढंग से काम कर पाएंगे? आखिर दोनों विज्ञान जिन सवालों से जूझते हैं, उनसे विशिष्ट तरीके से निपटना होगा। मात्र न्यूटननुमा ढंग से उनका सामना नहीं किया जा सकता।

यहां सवाल को इस तरह से भी पेश किया जा सकता है। क्या इन दोनों तरीकों को मिलाया जा सकता है? ज़रूर मिलाया जा सकता है और हम इस दिशा में आगे भी बढ़ रहे हैं। टेक्नॉलॉजी के विकास से इसे बल मिला है। दरअसल, भू-विज्ञान और जीव विज्ञान में किए जाने वाले अवलोकनों में टेक्नॉलॉजी क्रांतिकारी बदलाव लाई है।

आइए भू-विज्ञान की बात करें। वैज्ञानिक खोजों में इसे कभी वह सम्मान नहीं मिल पाया है, जिसका यह हकदार रहा है। इसे अधूरा या अमौलिक विज्ञान कहकर इसकी उपेक्षा की जाती रही है। माना जाता है कि इसमें अक्सर अधूरे आंकड़ों से ही काम चलाना पड़ता है। इसके विपरीत भौतिक शास्त्र के बारे में कहा जाता है कि यह ऐसा विज्ञान है जिसका अंतिम परिणाम निश्चित होता है। लेकिन सच तो यह है कि प्रकृति को समझने के लिए भू-विज्ञान में एक विशिष्ट प्रणाली या पद्धति है। मेरा तो यह मानना है कि पूरी तरह अज्ञात वस्तु को समझने के लिए यह सबसे उचित प्रणाली है।

उदाहरण के लिए एक भू-विज्ञानी एक चट्टान के पैटर्न को समझने के लिए उसकी विभिन्न परतों का भिन्न-भिन्न पहलुओं से अवलोकन करता है। यह वैसा ही है जैसे जासूस शरलॉक होम्स अपने विश्वस्त वॉटसन से पूछता है कि क्या रात का कुत्ता भौंका था? हो सकता है रात को कुत्ता न भौंका हो। एक आम पुलिसवाला इसे 'बचकानी' या 'सामान्य' बात मानकर खारिज कर सकता है, लेकिन इस आम पुलिसवाले और शरलॉक होम्स में यही तो अंतर है। एक अच्छे जासूस के लिए कोई सामान्य-सी बात भी अहम सुराग बन जाती है। दरअसल, हर घटना को उसके विशिष्ट संदर्भ की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। जिस तरह किसी आपराधिक मामले में पक्के सुराग न मिलने पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य एकत्र करने व घटना की अधूरी कड़ियों को जोड़ने के लिए कुछ तार्किक कल्पनाओं का सहारा लिया जाता है, वैसा ही कार्य एक भू-वैज्ञानिक करता है।

चार्ल्स डार्विन ने अपने गुरु चार्ल्स लीएल की पुस्तक 'द प्रिंसिपल्स ऑफ जियोलॉजी' का गहन अध्ययन किया था। संभव है कि डार्विन को क्रमिक परिवर्तन का विचार भू -विज्ञान के अध्ययन से ही मिला हो और उन्होंने इसे अपने विश्व प्रसिद्ध प्राकृतिक चयन के सिद्धांत (जैव विकास का सिद्धांत) के विकास में लागू किया हो।

रिचर्ड डॉकिंस का मानना है कि आइंस्टीन का साक्षेपता का सिद्धांत भले ही सब जगह लागू न हो पाए, लेकिन डार्विन का विकास का सिद्धांत ब्रह्मांड में हर जगह काम करेगा; केवल हमारे ब्रह्मांड में ही नहीं, अन्य ब्रह्मांडों में भी। भू-विज्ञान एकीकृत विज्ञान का एक ऐसा अनुपम उदाहरण है जिसमें किसी जटिल समस्या के समाधान के लिए विभिन्न तार्किक तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है। आलोचकों का कहना है कि भू-विज्ञान बहुत अधिक वर्णनात्मक है, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि भू-विज्ञान संबंधी कोई भी समस्या स्थान केंद्रित होती है। किसी परिदृश्य की व्याख्या कई तरीकों से की जा सकती है। ऐसे में किसी नतीजे के बारे में बताना हो तो सारी बातों का विस्तार से वर्णन करना ही होगा। उदाहरण के लिए आर्क्टिक में कम होती समुद्री बर्फ की एक वजह हवाओं के पैटर्न में बदलाव भी हो सकती है, न

कि वैश्विक ताप में बढ़ोतरी। ऐसी स्थिति में जलवायु परिवर्तन की व्याख्या इस विशिष्ट संदर्भ में करनी होगी, न कि वैश्विक संदर्भ में।

भौतिक शास्त्री से पर्यावरणविद बने जॉन हार्टी कहते हैं कि प्राकृतिक प्रक्रियाओं के हम कितने भी अलग-अलग मॉडल्स बना लें, परिणामों में हम 'भौतिकी स्तर' जैसी सटीकता नहीं ला सकते। तो इसका मतलब क्या यह निकाला जाए कि प्राकृतिक घटनाओं के बारे में हम सटीक भविष्यवाणी नहीं कर सकते या नतीजों को लेकर हम पूर्णतः आश्वस्त नहीं हो सकते? जॉन हार्टी एक बीच का रास्ता सुझाते हैं ताकि 'न्यूटनवाद' व 'डार्विनवाद' दोनों की खूबियों का समन्वय किया जा सके।

इसी ब्रह्मांड में धरती जैसे ही एक अन्य ग्रह की कल्पना कीजिए जहां पानी मौजूद है। इससे पृथ्वी के समान ही तमाम भू-वैज्ञानिक प्रक्रियाएं जन्म लेंगी। वे निश्चित चक्र में चलती हैं। ऐसे में मूलभूत काम यह है कि बड़े पैमाने पर फील्ड सर्वे द्वारा लंबे समय अंतराल के आंकड़े एकत्र किए जाएं और परिवर्तनों का दस्तावेज़ीकरण कर लिया जाए। इस कार्य में भू-विज्ञान मदद करता है।

इसी तकनीक का इस्तेमाल अन्य ग्रहों की प्रक्रियाओं को समझने में किया जा सकता है। मेरा मानना है कि अध्ययन की यह प्रणाली 21वीं सदी और उससे आगे भी जारी रहेगी। संयोग से हाल ही में सैन एंड्रियाज़ फाल्ट की खुदाई में गहराई में चाक जैसी नरम चट्टानें पाई गईं। इस फाल्ट में कम भूकंप आने की वजह यही है। यानी यहां भू -विज्ञान के अलावा अन्य कोई प्रणाली इस वजह का खुलासा नहीं कर सकती।

वापिस केल्विन पर लौटते हैं। उनकी सबसे बड़ी गलती यह थी कि उन्होंने धरती की उम्र निकालने के लिए केवल न्यूटन के सिद्धांतों पर अमल किया, जबकि इस काम में ऐतिहासिक विश्लेषण सम्बंधी आंकड़ों की भी सख्त ज़रूरत थी। दरअसल, प्राकृतिक प्रकियाओं को समझने में न्यूटनवाद व डार्विनवाद दोनों की अपनी-अपनी भूमिका है, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत जून 2008
अंक 233

- **अश्वत्थ वृक्ष : पीपल या कोई और?**
- **गणित का हौव्वा**
- **गिलहरी में दिमाग होता है**
- **कन्या शिशु के अस्तित्व का सवाल**
- **पालतू पशु जो अब जंगली बन चुके हैं**